मुठभेड़

अंग्रेजी में 'मुठभेड़' के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द 'एनकाउंटर' के शब्दकोश में कई अर्थ हैं जिनका फैलाव पूरी तरह से अघातक से लेकर बेहद कठोर तक है। 'एनकाउंटर' को ऐसे मौके के रूप में भी देखा जाता है जब किसी से अनियोजित मुलाकात हो जाय और दूसरी तरफ इसका प्रयोग दो विरोधी गुटों के बीच होने वाली हिंसक झड़पों के लिए भी होता है। पिछले कुछ वर्षों में एनकाउंटर (मुठभेड़) शब्द के अर्थ में खास अंतर नहीं रह गया है। आज मुठभेड़ शब्द प्रयोग हमेशा हिंसक अर्थ में ही किया जाता है, अधिकांशतः यह सुनियोजित होता है तथा प्रायः इसका परिणाम 'इच्छित अपराधी' या 'विधिबहिष्कृत' की मौत की होता है। कश्मीर से आंध्र प्रदेश से दिल्ली एवं पंजाब तथा हाल में मणिपुर की घटना को देखें तो भारतीय राज्य के लिए खास कर इसके पुलिस, अर्धसैनिक, सैन्य एवं अन्य दूसरे सुरक्षा बलों के लिए 'मुठभेड़' एक प्रशासनिक तरीका बन गया है। इस मुद्दे को लेकर भारत में नागरिक स्वतंत्रता एवं लोकतांत्रिक अधिकार आंदोलन लामबंद हुए हैं तथा उन्होंने हत्यारों को बेनकाब करने के लिए अथक अभियान चलाया है जिससे उन मुठभेड़ों से पर्दा उठा है, जिनका सब ओर गुणगान होता रहा है। इंदिरा गाँधी सरकार द्वारा लगाए गए 'आपात्काल' के दौरान के राजनीतिक घटनाओं के संदर्भ में, 'मुठभेड़' शब्द भारत की आलोचनात्मक राजनीतिक बहस के केन्द्र में आ गया था। आपात्काल की समाप्ति तथा जनता पार्टी द्वारा केन्द्र में सरकार बनाने के तुरंत बाद जयप्रकाश नारायण ने आंध्र प्रदेश राज्य में पुलिस एवं नक्सिलियों के बीच की मुठभेड़ की घटनाओं की जाँच के लिए सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश वी.एम. तारकुंडे की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। यद्यपि तारकुंडे समिति का गठन सरकार द्वारा नहीं किया गया था तथापि इस दिशा में यह एक महत्वपूर्ण अलग कदम माना जाता है। हाशिये पर स्थित मुठभेड़ से संबंधित बहस को मुख्यधारा में लाते हुए तारकुंडे समिति ने मुठभेड़ से संबंधित राज्य के क्रियाकलापों को उद्घाटित करके सावधान किया। ''एनकाउंटर्स आर मर्डर्रस'' नामक शीर्षक वाली अपनी रिपोर्ट में तारकुंडे समिति ने इस बात की पुष्टि की कि आंध्र प्रदेश सरकार एवं पुलिस सुनियोजित हत्याओं के जघन्य कृत्य में संलग्न थीं तथा इसे मुठभेड़ का नाम देकर इसे ढ़कने का काम कर रही थीं। समिति ने सुझाव दिया कि मुठभेड़ के संबंध में तथ्यों की जाँच के लिए केन्द्र सरकार एक स्वतंत्र जाँच आयोग की स्थापना करे। स्पष्ट तौर पर जिसे सरकार द्वारा मुठभेड़ का नाम दिया जा रहा था वह वस्तुतः डाकुओं, गैंगेस्टरों, अन्डरवर्ल्ड के लोगों, आतंकवादियों, नक्सलियों, छोटे–मोटे अपराधियों आदि से निपटने के लिए सरकार एवं इसके सुरक्षा बलों की एक सुनियोजित रणनीति थी। इसके अलावा आगे के भाग में मुठभेड़ की कहानी का जो विवरण दिया गया है, वह दर्शाता है कि जिन घटनाओं में सरकार मुठभेड़ होने का दावा करती है वह वास्वविकता में हत्या करने एवं इसकी योजना बनाने के घृणित कृत्य होते हैं।

मुठभेड़ की कहानियों को जोड़ते सूत्र

पिछले पैंतीस सालों में नागरिक स्वतंत्रता एवं लोकतांत्रिक अधिकार समूहों द्वारा मुठभेड़ों के मामलों की जाँच के आधार पर मुठभेड़ों का जो लेखा–जोखा सामने आता है, वह प्रत्येक मुठभेड़ में एक खास किस्म की कार्यविधि को उद्घाटित करता है। यह लेखा–जोखा हमेशा ही मुठभेड़ को अंजाम देने वाली पुलिस द्वारा ही दिया जाता है, कि मारा गया आदमी एक आतंकवादी या एक खूँखार अपराधी या एक गैंगेस्टर या नक्सल था, कि उसके बारे में पुलिस को निजी, गुप्त एवं दूसरे अप्रमाणिक ज़रियों से जानकारी मिली थी। पुलिस खुद शवों की पहचान करती है और उसे वे सबूत भी मिल जाते हैं जिनसे पता चलता है कि मारा गया व्यक्ति किसी किसी आतंकी या विद्रोही गतिविधि को अंजाम देने वाला था (जैसे कुछ साहित्य, हथियार इत्यादि)। वे मृत व्यक्ति के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) दर्ज़ करते हैं।

एफआईआर में भी पुलिस द्वारा बताए गई कहानी को ही दोहराया जाता है। ऐसी हत्या के मामले में पुलिस की टीम के खिलाफ कोई एफआईआर दर्ज़ नहीं की जाती है।

मुठभेड़ को लेकर पूरे देश में इस विचित्र पद्धति के जो दूसरे पहलू हैं वह ये हैं कि मुठभेड़ का स्थल हमेशा एक निर्जन, वीरान एवं विलग स्थान होता है। इसका समय प्रायः हमेशा देर रात या काफी सुबह दिन निकलने से पहले का होता है तथा प्रायः इसमें पुलिस को कोई चोट नहीं आती है। किसी प्रत्यक्षदर्शी की गैरमौजूदगी, या किसी प्रत्यक्षदर्शी के होने पर, पुलिस के बयान को चुनौती देने के लिए किसी प्रत्यक्षदर्शी के सामने नहीं आ पाने के कारण इन मुद्दों पर चुप्पी छा जाती है। केवल चंद मुठभेड़ों में हुई हत्याओं के मामले में ही परिवार के सदस्यों या प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा पुलिस की कहानी से अलग विवरण उपलब्ध हो पाता है कि कैसे मारे गए व्यक्ति को मुठभेड़ से पहले ही पुलिस के द्वारा उठाया गया था। या जब किसी ने देखा होता है कि पुलिस की कहानी में पूरी सच्चाई नहीं है। इन मुठभेड़ों को फर्ज़ी मुठभेड़ कहा जाता है तथा मीडीया में इसपर कुछ सवाल उठाए जाते हैं एवं बहुत ही कम मामलों में पुलिस के खिलाफ जाँच शुरू की जाती है। पुलिस द्वारा किए जाने वाले इन संज्ञेय अपराधों की जाँच के अभाव में, कोई मुठभेड़ वास्तविक है या फर्ज़ी यह पूरी तरह से इस बात पर निर्भर करता है कि इसका कोई चश्मदीद गवाह है या नहीं अथवा कोई अन्य पुलिस की कहानी पर सवाल उठाने का इच्छुक एवं सक्षम है या नहीं। जो कि किसी भी परिस्थिति में एक कठिन कार्य है।

मुठभेड़ का राजनीतिक संदर्भ अलग–अलग क्षेत्रों एवं अलग–अलग मामलों में भिन्न प्रकार का हो सकता है लेकिन मुठभेड़ की कहानी को जिस तरह से सामने रखा जाता है और उसे कदाचित जिस तरह से इसे वैध बना दिया जाता है वह सभी जगह समान ही होता है। मुठभेड़ की कहानी का समान्य प्रारूप यह है कि पुलिस द्वारा दिए गए विवरण को ही कहानी का 'प्रमाणिक' स्रोत मान लिया जाता है। पुलिस द्वारा बतायी गयी कहानी का खण्डन करने के इच्छुक चश्मदीद गवाहों की कमी तथा साथ ही राज्य की एजेंसियों के द्वारा मुठभेड़ की परिस्थितियों की स्वतंत्र एवं निष्पक्ष जाँच का अभाव, पुलिस एवं सुरक्षा बलों की जवाबदेही के साथ–साथ कानून के शासन की अवधारणा को भी क्षीण कर देता है।

मुठभेड़ एवं न्याय की तलाश

साफ तौर पर, चुँकि हर मुठभेड़ किसी न किसी व्यक्ति के जीवन के अंत से जुड़ी होती है इसीलिए यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त जीवन के अधिकार को लेकर संवैधानिक न्याय एवं कानून के शासन के मुद्दे पर सवालिया निशान लगा देती है। आपराधिक प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) तथा भारतीय दंड संहिता (आइपीसी) के अंतर्गत कई ऐसे महत्वपूर्ण प्रावधान हैं जिसमें किसी आपराधिक घटना को रोकने के लिए या किसी व्यक्ति की गिरफ़्तारी के दौरान पुलिस द्वारा बल प्रयोग किए जाने की सीमा का निर्धारण किया गया है (बॉक्स देखें)। इन कानूनों को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के साथ जोड़कर पढ़ने पर यह व्यक्ति के जीवन के अधिकार को छीनने के संबध में पुलिस एवं सुरक्षा बलों की शक्ति की सीमा को निर्धारित करता है। निश्चित रूप से बिना किसी न्यायिक एवं निष्पक्ष जाँच के यह पता नहीं लगाया जा सकता कि पुलिस एवं सुरक्षा बल की कार्यवाही इन प्रावधानों में उल्लेखित सीमाओं के अनुसार थी या नहीं।

इस तथ्य में कोई संदेह नहीं है कि सभी न सही पर मुठभेड़ के बहुत सारे मामले उन क्षेत्रों के होते हैं जहाँ भारतीय राज्य के खिलाफ निरंतर आंदोलन एवं संघर्ष हो रहे हैं। निसंदेह इनमें से कई आंदोलन जैसे भारत के उत्तर–पूर्वी राज्यों एवं कश्मीर, छत्तीसगढ़, झारखंड या आंध्र प्रदेश जैसे दूसरे क्षेत्रों में सशस्त्र आंदोलन हैं। फिर भी, चुँकि संविधान एवं कानून के महत्वपूर्ण प्रावधानों के अंतर्गत दिए गए आश्वासन अनुलंघनीय हैं तथा सभी व्यक्तियों को समान रूप से प्राप्त हैं। इसीलिए किसी भी परिस्थिति में जीवन के अधिकार को छीनने (व्यक्ति को मार कर) को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अंतर्गत जायज साबित किया

जाना ज़रूरी है। तथा इसके लिए एक स्वतंत्र एवं निष्पक्ष जाँच के सिवाय दूसरा कोई भी उपाय नहीं है जिससे इसके औचित्य को साबित किया जा सकता हो। इसीलिए यह चिन्ता एवं भय उत्पन्न करने वाली बात है कि अधिकांशतः मुठभेड़ों के सभी मामलों में बिना तथ्यों एवं परिस्थितियों की जाँच–पड़ताल के पुलिस के द्वारा बयान किए गए मुठभेड़ के कथाक्रम को ही प्रमाणिक मान लिया जाता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में यह गारंटी दी गई है कि किसी व्यक्ति को अपने जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार से केवल 'केवल कानून द्वारा स्थापित क्रिया विधि' द्वारा ही वंचित किया जा सकता है।
इसके अलावा सीआरपीसी की धारा 46 के अनुसार अगर एक व्यक्ति गिरफ़्तारी का विरोध करता है तो पुलिस आफ़ीसर उसकी गिरफ़्तारी के लिए पूरे बल का इस्तेमाल कर सकता है। परन्तु इस धारा में यह भी स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि किसी भी परिस्थिति में पुलिस इतने बल का इस्तेमाल नहीं कर सकती जिससे व्यक्ति की मौत हो जाए, सिवाये उस मामले में जबकि अभियुक्त किसी ऐसे अपराध का आरोपी हो जिसकी सज़ा फांसी या आजीवन कारावास हो। ध्यान दें कि इस तरह से धारा 46 पुलिस द्वारा अपनी ड्यूटी के दौरान की जाने वाली कार्यवाही पर अंकुश लगाती है। यह कोई ऐसा प्रावधान नहीं है जिससे पुलिस उस किसी भी व्यक्ति को मार सकती है जो उसके हिसाब से ऐसे अपराध का आरोपी हो जिसकी सज़ा फांसी या आजीवन कारावास है। पुलिस द्वारा इस तरह से हुई मौत क्या वास्तव में सही ढंग से अपनी ड्यूटी करते हुए हुई या यह केवल एक बहाना है, यह एक न्यायोचित और निष्पक्ष तहकीकात और अभियोजन के द्वारा ही साबित हो सकता है।
आईपीसी की धारा 100 में स्व बचाव के अधिकार के लिए किसी की जान तक ले लेने के लिए आधार बताए गए हैं। इस कानून में कहा गया है कि कोई व्यक्ति अपने बचाव के लिए किसी दूसरे व्यक्ति की जान ले सकता है अगर – क) अगर उस व्यक्ति द्वारा किए गए वार से मौत हो सकने या गंभीर रूप से घायल हो जाने की संभावना हो। ख) अगर वार बलात्कार करने या कोई अप्राकृतिक कृत्य करने की नीयत से किया गया हो। ग) या फिर वार किसी को गलत ढंग से बंदी बनाने की नीयत से किया गया हो, जिससे व्यक्ति को अपने को छुटाने के लिए सरकारी ॲथोरिटी के पास न पहुँच पाने का डर हो।

मुठभेड़ें और न्याय की भूलभुलैया

मुठभेड़ों के कई मामले सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालयों के पास आए हैं और बहुतों में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग (एनएचआरसी) के सामने याचिकाएं दाखिल की गई हैं। परन्तु बहुत कम मामलों में न्यायालयों ने कोई ऐसे फैसले दिए हैं जिनमें राज्य द्वारा दमन के लिए मुठभेड़ों के इस्तेमाल की आलोचना की गई है। कुछ मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं को सुझाव दिये कि वे न्याय हासिल करने के लिए या तो स्थानीय मजिस्ट्रेट की अदालत में व्यक्तिगत मामला दाखिल करें या फिर राज्य सरकार को मामले से संबंधित ज्ञापन दें। कुछ अन्य मामलों में सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों ने ऐसे आदेश भी दिए जिनमें मारे गए लोगों के परिवारों को राहत दी गई थी और मुठभेड़ के मामलों की तहकीकात के लिए कुछ तौर तरीके निर्धारित किए गए थे। एक ऐसा मामला मणीपुर में 1997 में पुलिस मुठभेड़ में दो लोगों की मौत से संबंधित था। इस मामले में पीयूसीएल द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में दायर याचिका पर डिस्ट्रिक्ट और सैशंस न्यायाधीश द्वारा जांच के आदेश दिए गए थे। इस जांच से पता चला कि पुलिस ने जिस मुठभेड़ का दावा किया था वह हुई ही नहीं थी और वे दोनों व्यक्ति असल में पुलिस हिरासत में मारे गए थे। इसी तरह से उच्च न्यायालयों और एनएचआरसी ने भी जनवादी अधिकार संगठनों द्वारा दर्ज़ की गई याचिकाओं के जवाब में कभी कभी पुलिस की जवाबदेही के संबंध में खरे और सशक्त आधार दिए हैं। जैसे कि एनएचआरसी ने 1996 में सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों और उनके माध्यम से पुलिस के डायरेक्टर जरनलों को मुठभेड़ में हुई मौतों की तहकीकात के लिए क्रियाविधि संबंधी दिशानिर्देश दिए थे। एनएचआरसी ने ये

दिशानिर्देश आंध्र प्रदेश सिविल लिबर्टी कमिटी (एपीसीएलसी) द्वारा आंध्र प्रदेश में फर्ज़ी मुठभेड़ों के 285 मामलों के संबंध में याचिका दर्ज़ किए जाने पर दिए थे। एनएचआरसी इनमें से केवल पाँच की जांच कर सकता था, क्योंकि अन्य मामले एनएचआरसी में किसी मामले की रिपोर्ट दर्ज़ करने के लिए नियत अवधि के नहीं थे। परन्तु मामलों की सुनवाई और गवाहों की जिरह में एनएचआरसी ने पाया कि इन कथित मुठभेड़ों की घटनाओं में एपीसीएलसी द्वारा दिया गया विवरण, पुलिस की कहानी की तुलना में कहीं अधिक विश्वसनीय था। एनएचआरसी द्वारा दिए गए कार्यविधी संबंधी दिशानिर्देश बेहद महत्वपूर्ण हैं – जैसे कि एनएचआरसी ने सुझाव दिए थे कि 1) कि मुठभेड़ में हुई मौत को संज्ञेय अपराध माना चाहिए और मौत की परिस्थिति और तथ्यों की तहकीकात के लिए तुरंत कदम उठाए जाने चाहिए। 2) क्योंकि मुठभेड़ में पुलिस खुद शामिल है इसलिए यह ज़रूरी है कि मामलों की तहकीकात किसी और जांच एजेंसी को सौंप दी जाए। इसमें कोई शक नहीं है कि एनएचआरसी की सिफारिशों में साफ कहा गया है कि मुठभेड़ों के सभी मामले संज्ञेय अपराध माने जाने चाहिए, जब तक कि कोई स्वतंत्र जांच एजेंसी पुलिस की कहानी की पुष्टि न कर ले।

आंध्र प्रदेश में 1996 में सीपीआई (एमएल) के एक नेता की मुठभेड़ में मौत के एक अन्य मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने कहा कि मुठभेड़ दंडनीय गैरइरादतन हत्या (कल्पेबल होमीसाइड) है। यह कृत्य क्षमायोग्य है या नहीं या इस तरह से जो मौत हुई है वह पुलिस ऑफ़ीसर द्वारा कानूनी रूप से अपनी ड्यूटी करते समय हुई थी या नहीं यह कानूनी तहकीकात द्वारा ही साबित किया जा सकता है। आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि कथित सीपीआई (एमएल) नेता की मौत के लिए ज़िम्मेदार पुलिस अधिकारी के खिलाफ दंडनीय गैरइरादतन हत्या का मामला दर्ज़ न करना न तो उचित है न न्यायिक।

एनएचआरसी और आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के इन निर्देशों के बावजूद आंध्र प्रदेश में मुठभेड़ों के मामलों में ज़िम्मेदार पुलिस अधिकारियों के खिलाफ़ आपराधिक मामला दर्ज़ होना तो दूर की बात, इन घटनाओं के बाद कोई तहकीकात तक नहीं होती। इस तरह से आज यह परिस्थिति है कि मुठभेड़ों के संबंध में संदर्भ के अनुसार विकसित हुए विधिशास्त्र और दिशानिर्देशों को पुलिस और सुरक्षा बल पूरी तरह से दरकिनार कर रहे हैं। इस तरह से पुलिस और सुरक्षा बलों की जवाबदेही खतम हो जाती है और वे कानून के शासन से बाहर हो जाते हैं। दूसरी ओर मुठभेड़ों की कई और जनहित याचिकाओं में न्यायालयों ने कोई उपयुक्त दिशानिर्देश नहीं दिए हैं। इसके उलट उन्होंने इन मामलों को निजी शिकायतों पर व्यक्तिगत न्याय के लिए स्थानीय स्तर पर रोज़मर्रा के कानूनों द्वारा संबोधित किए जाने वाले मामलों जैसा मान लिया।

मौजूदा स्थिति

एपीसीएलसी के मामले में फरवरी 2009 के आंध्र प्रदेश के फैसले ने मुठभेड़ों पर फिर से विवाद छेड़ दिया। यह फैसला राज्य में 1997 से 2007 के बीच मुठभेड़ों में हुई करीब 1800 मौतों से संबंधित था। इन मामलों में मुठभेड़ों के संबंध में एनएचआरसी और आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के 1997 के दिशानिर्देशों का पूरी तरह से हनन किया गया था। ज़िम्मेदार पुलिस अधिकारियों के खिलाफ कानूनी कार्यवाही करना तो दूर, इन मामलों में घटनाओं के तथ्यों और परिस्थितियों की जांच भी नहीं की गई थी। दूसरी ओर इनमें से कुछ मामलों में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के फैसलों में मुठभेड़ों के मामलों में पुलिस अधिकारियों की न्यायिक जवाबदेही और तयशुदा कार्यविधियों के पालन को पूरी तरह से नकार दिया गया था।

साथ ही सन 2007 में मुठभेड़ों में हुई मौतों के संबंध में आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय के रुख में एकाएक बदलाव आ गया। एपीसीएलसी द्वारा दर्ज़ एक याचिका में उच्च न्यायालय ने 1997 के अपने ही फैसले को उलट दिया और कहा कि मुठभेड़ में हुई मौत के *हर* मामले में पुलिस अधिकारियों के खिलाफ मामला दर्ज़ किया जाना ज़रूरी नहीं है। उच्च न्यायालय ने कहा कि मुठभेड़ में हुई मौत की घटना में एफआईआर तभी दर्ज़ की जाएगी *अगर* कोई ऐसी विशिष्ट शिकायत दर्ज़ की जाए कि अमुख व्यक्ति द्वारा

किसी व्यक्ति की मौत हुई। इसके लिए मुठभेड़ के हर मामले और इसके संबंध में पुलिस की कहानी को चुनौती देने के लिए किसी न किसी को आगे आकर शिकायत दर्ज़ करवाना ज़रूरी है। साथ ही मुठभेड़ के संबंध में पुलिस की कहानी को विश्वसनीय ढग से चुनौती देने के लिए किसी को उस पुलिस अधिकारी का नाम भी देना पड़ेगा जिसके गोली चलाने से किसी व्यक्ति की मौत हुई। इसमें कोई संदेह नहीं है कि 2007 के फैसले ने पुलिस की जवाबदेही सुनिश्चित करवाने को एक बेहद जटिल काम बना दिया है।

परन्तु आंध्र प्रदेश का 2007 का फैसला एकमत से नहीं आया था, बल्कि यह बहुसंख्यक फैसला था। राज्य में मुठभेड़ों में होने वाली मौतों की विशाल संख्या को ध्यान में रखते हुए, इस मुद्दे को आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के पूरे बैंच के पास भेज दिया गया। इस बैंच ने एपीसीएलसी द्वारा उठाए गए सरोकारों की तारीफ करते हुए, मामले को आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के पाँच जजों के बैंच के पास भेज दिया। इस बैंच ने फरवरी 2009 में अपने फैसले में तीन प्रमुख बिंदुओं पर बल दिया : क) पुलिस द्वारा मुठभेड़ों में मौतों के हर मामले में एफआईआर दर्ज़ की जानी चाहिए, ख) एक स्वतंत्र और निष्पक्ष जांच होनी चाहिए, और ग) स्व बचाव के दावे को अभियोजन के स्तर पर साबित किया जाना चाहिए न कि तहकीकात के स्तर पर।

इस फैसले से परेशान होकर आंध्र प्रदेश पुलिस ऐसोसिएशन सर्वोच्च न्यायालय के पास आई और न्यायालय से आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय से फरवरी 2009 के फैसले पर एक्स पार्टे अंतरिम रोक (स्टे) लगाने की मांग की। आंध्र प्रदेश पुलिस ऐसोसिएशन के तर्क का मुख्य बिंदू यह था कि आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय का फैसला अस्थानस्थ और संदर्भ से हट कर है क्योंकि इस में उस चुनौती को नज़रअंदाज़ किया गया है जिसका सामना आंध्र प्रदेश की पुलिस माओवादियों से निपटने में कर रही है, इसलिए इस फैसले से पुलिस के नैतिक बल पर बेहद बुरा असर पड़ेगा और राज्य में माओवादियों की वृद्धि और विकास के लिए रास्ता खुलेगा।

मुठभेड़ों में होने वाली मौतों के मुद्दे को भारत में आज जिस तरह से देखा जा रहा है उससे एक जनवादी समाज द्वारा अपनाए जाने वाले कानून के शासन के प्रारूप और न्याय के बुनियादी ढांचे पर कई सवाल खड़े होते हैं। पुलिस और सुरक्षा बल किसी भी स्वतंत्र एजेंसी द्वारा जांच से बचाव की इस आधार पर मांग करते हैं कि इससे कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए जवाबदेह बलों का हौसला टूटेगा। दूसरी ओर पुलिस बल के बाहर की एजेंसियों द्वारा मुठभेड़ों के मामलों की जांच में लगातार यह पाया गया है कि पुलिस इन सभी मामलों में कानून तोड़ती रही है। जनतंत्र के लिए ज़रूरी है कि सभी, जिनमें वे भी शामिल हैं जिन्हें कानून लागू करने की ज़िम्मेदारी दी गई है, कानून के शासन को कड़ाई से और एकरूपता से स्वीकारें। मुठभेड़ में हुई सभी मौतों के मामलों में एनएचआरसी के दिशानिर्देशों और ऊपर उल्लेखित न्यायालय के फैसले के अनुसार निष्पक्ष तहकीकात और एक न्यायोचित अभियोजन, कानून लागू करने वाली एजेंसियों की जवाबदेही सुनिश्चित करने और भुग्तभोगियों को न्याय दिलाने के लिए अल्पतम ज़रूरत है। इन सिद्धातों का कड़ाई से पालन किए बिना कानून का शासन विलुप्त हो जाएगा और न्याय हमेशा के लिए अवरुद्ध हो जाएगा।